□ डॉ० राजाराम जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०, शास्त्राचार्य
[मगध विश्वविद्यालय, बोधगया (बिहार)]

विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अङ्क में ग्रथित

प्राकृत-अपभ्रंश पद्यों का काव्यमूल्यांकन

□

महाकवि कालिदास सार्वभौम कवि हैं। अनुपम पदविन्यास एवं काव्यगरिमा उनके समस्त नाटकों एवं काव्यों में उपलब्ध है। प्रकृति-वर्णन एवं मानव के आन्तरिक भावों का निरूपण महाकवि ने बड़ी ही पटुता से प्रदर्शित किया है। अपनी विलक्षण कल्पना और काव्य कौशल के बल पर उन्होंने मानव-स्वभाव के सम्बन्ध में ऐसी अनेक बातें कही हैं जिन्हें सृष्टि में ध्रुवसत्य की संज्ञा दी जा सकती है। रचनाओं में भारतीय साहित्य परम्परा तथा आदर्श की पूरी झांकी प्राप्त होती है। कालिदास का शृंगार जीवन को मधुमय ही बनाता है, वासनापूर्ण नहीं। वे प्रेय पर श्रेय का प्रभुत्व दिखलाते हैं। उनकी दृष्टि में हेय तो सर्वथा हेय ही है। जिस शृङ्गार में वासनाधिक्य रहता है और विवेक का अभाव हो जाता है वह शृङ्गार नितान्त हेय है क्योंकि इस प्रकार के शृङ्गार से व्यक्ति एवं समाज दोनों का अहित होता है। उनके नाटकों में मानव की मानसिक क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को उस रूप में चित्रित किया गया है जो आज भी मानव के लिये दर्पण के समान हैं। वास्तव में हम उनके पात्रों को उल्लसित देख आनन्द-विभोर हो उठते हैं, विलाप करते देख दुखविह्वल हो जाते हैं और उन्हें शोकमग्न देख हमें वेदना होने लगती है। साहित्य की यही सबसे बड़ी कसौटी है।

कालिदास की साहित्य-साधना समस्त संस्कृत वाङ्मय के लिये बौद्धिक, भावात्मक एवं मानसिक विकास में एक कड़ी के समान है। उन्होंने जहाँ जिस भाव का चित्रण किया है, वहाँ वह भाव हमें बरसाती नदियों से बहाकर प्रशान्त महासागर में पहुंचा देता है। प्रेमी-प्रेमिका के भोग-विलास एवं शील-सौष्ठव के प्रति भी आस्था एवं अनुराग व्यक्त करते हैं। राष्ट्र के अमर गायक कवि ने सांस्कृतिक परम्पराओं का यथेष्ट पोषण किया है। हम यहाँ उनके समस्त काव्य साहित्य का मूल्याङ्कन प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। केवल विक्रमोर्वशीय-नाटक के चतुर्थ अङ्क में ग्रथित नेपथ्य के माध्यम से १८ एवं सामान्य वर्णनक्रम में १३, इस प्रकार कुल ३१ प्राकृत-अपभ्रंश पद्यों के काव्य सौन्दर्य का ही विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे।

विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अङ्क का प्रारम्भ ही प्राकृत-अपभ्रंश पद्य से होता है। नेपथ्य से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वनि आती है कि "एक तालाब के जल में बैठी हुई हँसी अपनी प्रियसखी के विरह में रुदन कर रही है।" कवि ने प्रारम्भ से ही विरह का वातावरण प्रस्तुत करने के हेतु प्रतीक रूप में हंसी को प्रस्तुत किया है। हंसी अपनी सखी के वियोग में अनमनी हो जाती है। दूसरी ओर सूर्य की रश्मियों के स्पर्श से सरोवर के कमल भी विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार एक ही पद्य में कवि ने दो दृश्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किये हैं। एक ओर हंसी की विमनस्कता और दूसरी ओर सूर्यकरस्पर्श से कमल का विकास। ये दोनों ही यहाँ प्रतीक हैं। हंसी की विमनस्कता उर्वशी के वियोग का संकेत उपस्थित करती है और कमल का विकास पुरुरवा एवं उर्वशी के पुर्नमिलन का संकेत देता है। महाकवि ने व्यञ्जना द्वारा इन दोनों तथ्यों का समावेश बड़ी ही कुशलता से किया है। प्रासाङ्गिक गाथा निम्न प्रकार है :—

पिअसहिविओअविमणा सहि हंसी वाउला समुल्लवइ।
सूरकरफंसविअसिअ तामरसे सरवरुसंगे ॥—विक्रमो० ४।१

द्वितीय पद्य में पुन: कवि हमें एक संकेत देता है। वह दो हंसियों को सखी के वियोग में आँसू बहाते हुए प्रस्तुत करता है। यहाँ ये दोनों हंसियां उर्वशी की सखियां चित्रलेखा एवं सहजन्या की प्रतीक हैं। हंसियों का व्याकुल होना तथा रुदन करना इस बात की ओर इङ्गित करता है कि शीघ्र ही उर्वशी का वियोग होने वाला है और ये दोनों सखियां उर्वशी के वियोग से प्रताड़ित होने के कारण ही विलाप कर रही हैं। यद्यपि द्वितीय एवं तृतीय पद्य प्राय: समान हैं किन्तु इनके द्वारा कवि ने जिस काव्य वातावरण की मधुरिमा को प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त महनीय है। समस्त कथावस्तु व्यञ्जना के रूप में समक्ष आ जाती है और दर्शक एवं पाठकों को नेपथ्य की ध्वनि से ही नाटकीय वस्तु का परिज्ञान हो जाता है। वातावरण का सौरभ अपनी तीव्रता से मन को उल्लसित करने लगता है। महाकवि कालिदास नेपथ्य में ही प्रतीकात्मक उक्त वातावरण का सृजन करते हैं :—

सहअरि दुक्खालिद्धअं सरवर अम्मि सिणिद्धअं।
वाहोवग्गिअणअणअं तम्मइ हंसी जुअलअं ॥—वही ४।२

प्राकृत पद्य एवं गद्य में वर्णित वातावरण से ऐसा अनुमान होता है कि पुररवा शयन कर रहा है। सूर्य की स्वर्णिम रश्मियां वातायन से झांकती हुई उसकी शैया पर पड़ती हैं और वह स्वप्न में ही उर्वशी के वियोग का अनुभव करता हुआ उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। सखी सहजन्या के कथन से एवं उसकी पुष्टि में लिखे गये प्राकृत गद्य से उक्त तथ्य स्पष्ट हो जाता है। सहजन्या कहती है :—"**सहि ण क्खु तारिसा आकिदिविसेसा चिरं दुक्खभाइणो होन्ति। ता अवस्सं किंपि अणुग्गहणिमित्तं भूवोवि समाअम कारणं हविस्सदि (प्राचीदिशं विलोक्य) ता एहि। उदअमुहस्स भअवदो सुज्जस्स उवट्ठाणं करेम्ह।**" (वही, चतुर्थ अंक, तृतीय पद्यान्तर प्रयुक्त गद्य खण्ड)

स्पष्ट है कि दु:ख या वियोग का समय सर्वदा एक जैसा नहीं रहता। वियोग के पश्चात् संयोग का अवसर आता ही है। अत: सखियां सूर्य प्रार्थना के लिये उपक्रम करती हैं।

इस सन्दर्भ में महाकवि ने पुरुरवा को नगाधिराज के रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ यह नगाधिराज वास्तव में राजा के जीवन की छाया है। राजा को स्वप्न में प्रिया का हरण दिखाई देता है और आँखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुलते ही उसे मेघ का दर्शन होता है। वह बिजली को प्रिया समझकर उसका पीछा करता है और उसकी मानसिक उद्विग्नता बढ़ती जाती है। महाकवि ने राजा की इस मनोदशा का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। यथा :—

गहणं गइंदणाहो पिअविरहुम्मा अपअलिअ विआरो।
विसइ तरुकुसुम किसलअ भूसिअणिअदेह पब्भारो॥ —४।५

अर्थात् यह गजराज अपनी प्रिया के वियोग में पागल बनकर वहाँ अपनी मनोव्यथा को प्रकट करने के हेतु वृक्षों के पुष्पों एवं कोमल पत्तों से अपने शरीर को सजा रहा है। और उद्विग्न-सा गहनवन में प्रवेश कर रहा है।

इस प्रकार कवि ने पुरुरवा को गजराज के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है और इसकी तीव्र व्यञ्जना पुनः हंस का प्रतीक प्रस्तुत करके की है :

हिअआहि अपिअ दुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ।
वाहोग्गअ णअणओ तम्मइ हंस जुआणओ॥—वही ४।६

अर्थात् यह युवा हंस अपनी प्यारी के विछोह में पंख फड़फड़ाता हुआ आँखों में आँसू भरे हुए सरोवर में बैठा सिसक रहा है।

इस प्रकार कवि ने हंस के रूप में वियोगी पुरुरवा को उपस्थित किया है। कवि पुरुरवा की मनोव्यथा एवं घबराहट को प्रस्तुत करता हुआ नेपथ्य से ध्वनि कराता है कि "यह तो अभी-अभी बरसने वाला बादल है, राक्षस नहीं, इसमें यह खिचा हुआ इन्द्र का धनुध है राक्षस का नहीं और टप-टप बरसने वाले ये वाण नहीं जलबिन्दु हैं, एवं यह जो कसौटी पर बनी हुई सोने की रेखा के समान चमक रही है, यह मेरी प्रिया उर्वशी नहीं, विद्युतरेखा है।

संस्कृत पद्य में निरूपित इस शंकास्पद स्थिति का निराकरण कवि प्राकृत-पद्य द्वारा करता है और वह अपनी मुग्धावस्था को यथार्थ रूप में प्राप्त कर बिजली का अनुभव करता है। पुरुरवा सोचता है कि मेरी मृगनयनी प्रिया का कोई राक्षस अपहरण करके ले जा रहा है। मैं उसका पीछा कर रहा हूँ। पर मुझे प्रिया के स्थान पर विद्युत और राक्षस के स्थान पर कृष्णमेघ ही प्राप्त होते हैं। कवि ने यहाँ नायक की भ्रान्तिमान मनस्थिति का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण किया है। कवि कहता है :—

मइं जाणिअं मिअलोअणी णिसअरु कोइ हरेइ।
जाव णु णवतलि सामल धाराहरु वरिसेइ॥ —वहीं० ४।८

बरसते हुए बादलों को देखकर पुरुरवा की वेदना अधिक बढ़ जाती है और वह उन पर अपनी भावनाओं का आरोपण करता है। वह अनुभव करता है कि मेघ क्रोधित होकर ही जल की वर्षा कर रहे हैं। अतः वह उनसे शान्त रहने की दृष्टि से प्रार्थना करता है। और कहता है कि हे मेघ, थोड़े समय तक आप लोग रुक जाइये। जब मैं अपनी प्रिया को प्राप्त कर लूँ तब तुम अपनी मूसलाधार वर्षा करना। प्रिया के साथ तो मैं सभी कष्टों को सहन कर सकता हूँ, पर एकाकी इस गर्जन-तर्जन को सहन

आचार्यप्रवर अभिनन्दन ग्रन्थ श्री आनन्द ग्रन्थ आचार्यप्रवर अभिनन्दन श्री आनन्द ग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर सकना सम्भव नहीं प्रतीत होता। इस पद्य में कवि ने मेघ को मानव के रूप में चित्रित कर नाना प्रकार की भावनाओं का विश्लेषण किया है। कवि ने प्रकृति को मानव के रूप में देखा है :—

जलहर संहर एहु कोपइँ आढत्तओ अविरल धारा सार दिसामुह कंतओ।
ए मइँ पुहवि भमंतो जइपिअँ पेक्खमि तव्वे जं जु करीहिसितंतु सहिहिमि॥ —४।११

उन्मत्त पुरुरवा अपने पद का अनुभव कर मेघों को भी आदेश देता है कि वे अभी वर्षा बन्द कर दें। तत्क्षण ही उसे प्रकृति का मधुमय वातावरण आकृष्ट कर लेता है। यह वातावरण विप्रलम्भ को संवर्द्धित करने के लिये उद्दीपन है। महाकवि कालिदास ने उद्दीपन के रूप में भौरों की झंकार एवं कोकिल की कूक को आवश्यक माना है। पवन के प्रताड़न से कल्पतरु के पल्लव नाना प्रकार के हावों-भावों को प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे हैं। पुरुरवा की उन्मत्तावस्था वृद्धिगत होती जाती है और वह वर्षा के उपकरणों को ही अपने राजसी उपकरण समझने लगता है। महाकवि ने उक्त अवस्था का प्राकृत-पद्य के माध्यम से निम्न प्रकार चित्रण किया है :—

गंधमाइअ महुअर गीएहिं वज्जंतेहिं परहुअ तूरेहिं।
पसरिअ पवणुव्वेलिअपल्लव णिअरु,
सुललिअ विविह पआरं णच्चइ कम्पअरु॥—वही० ४।१२

कवि ने यहाँ राजा की भावना को प्रकृति में आरोपित किया है तथा उसकी मानसिक अवस्था का प्रतिफलन भी प्रस्तुत किया है।

राजा की प्रेमोन्मत्तावस्था वृद्धिगत होती है। यह प्रिया के अन्वेषण में प्रवृत्त होता है। उसे ऐसा आभास होता है कि प्रिया से वियुक्त उन्मत्त गज, पुष्पों से युक्त पहाड़ी जंगल में विचरण कर रहा है। कुसुमोज्ज्वल गिरिकानन में विचरण करता हुआ अपने चित्त की विभिन्न भूमिकाओं का स्पर्श करता है। प्रियाविरह के कारण उसकी मानसिक दशा प्रतिक्षण उग्र होती जा रही है। महाकवि ने नेपथ्य से राजा की इसी अवस्था का सजीव चित्रण किया है। यथा :—

दइआरहिओ अहिअं दुहिओ विरहाणुगओ परिमंथरओ।
गिरिकाणणए कुसुमुज्जलए, गजजूहवई बहुझीण गई॥ —वही ४।१४

विरह की पराकाष्ठा वहाँ होती है जहाँ नायक अपने विवेक को खोकर चेतन-अचेतन का भेद खो बैठता है। उसे यह विवेक नहीं रहता कि तिर्यञ्च भी सार्थक वाणी के अभाव में किसी निश्चित बात का उत्तर नहीं दे सकते हैं। जब विरह की अन्तरावस्था अत्यधिक बढ़ जाती है, तब यह पराकाष्ठा की वृत्ति आती है। मेघदूत का यक्ष अपनी भाव-विभोर अवस्था के कारण ही 'धूमज्ज्योतिर्सलिल मरुताम्' के संघात मेघों द्वारा अपनी प्रिया के पास सन्देश भेजता है। भावों की पराकाष्ठा ही नायक को इस स्थिति में पहुँचाती है। पुरुरवा अपनी प्रेयसी के अन्वेषण में संलग्न होकर मयूरों से प्रार्थना करता है कि 'सर्वत्र विचरण करने वाले हे मयूरो, तुमने मेरी प्रेयसी को देखा है? उस चन्द्रमुखी हंसगामिनी को तुम अवश्य ही पहिचानते होगे। मैं तुम्हें उसके चिन्हों को बतलाता हूँ। आशा है उन चिन्हों के बल पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम उसे अवश्य पहिचान लोगे। वास्तव में मेरी प्रिया के घुँघराले केश मयूरों के केशपाशों से भी सुन्दर हैं।' हाथ जोड़कर पुरुरवा मयूरों से अनुनय करता है :—

बंहिण पइँ इअ अब्भत्थिअमि आ अक्खहि मं ता,
एत्थवणे भम्मंते जइ पइँ दिट्ठी सा महू कंता।
णिसमाहि मिअंक सरिसवअणा हंसगई,
ए चिण्हे जाणीहिसि आअक्खिउ तुज्झ मइँ ॥—४।२०

राजा की विरहावस्था की पुष्टि नेपथ्य से होती है। नेपथ्य में प्रतीक रूप में पुरुरवा को गज कहा गया है और उसकी समस्त क्रियाओं एवं मनोभावों को नेपथ्य द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। जिन पद्यों को कवि ने उपस्थित किया है वे वस्तुतः दृश्यकाव्य के मर्म द्योतक हैं। भले ही कतिपय आलोचक उन्हें प्रक्षिप्त कहें पर उनके बिना राजा की व्यथा की अभिव्यक्ति होती ही नहीं। अतएव यह महाकवि कालिदास की ही सूझ है कि जिसने पुरुरवा के विरह शोक को उन्मत्त गज के रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है :—

परहुअ महुरपलाविणि कंती णंदणवण सच्छंद भमंती।
जइ पइँ पिअअम सा महु दिट्ठी ता आ अक्खहि महु परपुट्ठी ॥—४।२४

उक्त पद्य में पुरुरवा अपनी प्रियतमा का पता कूजती हुई कोकिल से पूछता है। पुरुरवा हंस को देखकर समझता हैं कि इसने मंद मदिर चाल मेरी प्रियतमा से ही सीखी है अतः इसने अवश्य ही मेरी प्रियतमा को देखा होगा। अतएव वह हंस के समक्ष अपनी हार्दिक वेदना को उपस्थित करते हुए कहता है :—

रे रे हंसा किं गोइज्जइ गइ अणुसारें मइँ लक्खिज्जइ।
कइँ पइँ सिक्खिउ ए गई लालसा सा पइँ दिट्ठी जहण मरालसा ॥—४।३२

इस प्रकार महाकवि कालिदास ने पुरुरवा द्वारा चक्रवाक, गज, पर्वत, समुद्र आदि से अपनी प्रिया का पता पुछवाया है। महाकवि ने पुरुरवा की इस हार्दिक वेदना को प्राकृत पद्यों में व्यक्त किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन भावनाओं को कवि संस्कृत में अभिव्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करता है उन भावों को उसने प्राकृत-पद्यों में अभिव्यक्त किया है। यहाँ हम उदाहरणार्थ एक-दो पद्य ही उद्धृत करना उचित समझते हैं। पुरुरवा पर्वत से पूछता हुआ कहता है :—

फलिह सिलाहअ णिम्मलणिज्झरू बहुविह कुसुमें विरइअसेहरु।
किणर महुरग्गीअ मणोहरु देक्खावहि महु पिअअम महिहरु ॥—४।५०

स्फटिक की चट्टानों पर बहते हुए उजले झरनों वाले रंग-विरगे फूलों से अपनी चोटियाँ सजाने वाले, किन्नरों के जोड़ों मे मधुर गीतों से सुहावने लगने वाले हे पर्वत, मेरी प्यारी की एक झलक तो मुझे दिखा दो।

इस प्रकार पुरुरवा मयूर, कोकिल, हस, चकवा, भ्रमर, हाथी, पर्वत नदी, हिरण (४।७१) प्रभृति से अपनी प्रिया का पता पूछ-पूछकर सन्तोष प्राप्त करता है। महाकवि ने इन सभी मर्मस्थलों को प्राकृत पद्यों में ही निबद्ध किया है। संस्कृत के पद्यों द्वारा इस प्रकार की सरस भावनाएँ अभिव्यक्त नहीं हो सकी हैं। पुरुरवा ने हरिणी से पता पूछते समय उर्वशी की जो शरीराकृति व्यक्त की है, उसके आधार पर एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेखा-चित्र द्वारा उर्वशी को अंकित किया जा सकता है। अजन्ता की गुफाओं में इस प्रकार के कई चित्र पाये जाते हैं। कवि कहता है :—

सुर सुन्दरि जहण भरालस पीणुत्तुंग घणत्थणी,
थिरजोव्वण तणुसरीरि हंसगई।
गअणुज्जल काणणें मिअलोअणि भमंती
दिट्ठी पइँ तह विरह समुद्दंतरें उतारहि मइँ॥—४।५६

अर्थात् "नितम्बों के भारी होने के कारण धीरे-धीरे चलने वाली और उतुंग एवं पीनस्तनों वाली, चिरयुवा, कृशकटिवाली, हंस जैसी गतिवाली उस मृगनयनी उर्वशी को यदि तुमने इस आकाश के समान उज्ज्वल वन में घूमते हुए देखा हो तो उसका पता बताकर मुझे इस विरहसागर से उबार लो।"

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकवि कालिदास ने गहन भावनाओं की अभिव्यक्ति के हेतु प्राकृत-पद्यों का प्रयोग किया है। ये पद्य महाकवि द्वारा ही विरचित हैं। इसकी पुष्टि अनेक विद्वानों के कथन से होती है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने गहन शोध-खोज के बाद यह निष्कर्ष निकाला है—"यह और कुछ नहीं, राजा के स्वयं जीवन की छाया है, जो वासना के मुखर हो उठने से, 'प्राकृत' में फूट निकली हैं। कालिदास की इस कला को पकड़ पाना तो दूर रहा, लोगों ने इसे क्षेपक बना दिया। सोचा इतना भी नहीं कि कवि गुरु के अतिरिक्त यह सूझता भी किसे, जो यहाँ जोड़ दिखाता। निश्चय ही यह अपूर्व नाटक दत्तचित्त हो सुनने का है, कुछ किसी अंश को ले उड़ने का नहीं। धीरज धर ध्यान से सुनें तो सारी गुत्थी आप ही सुलझ जाय और 'प्राकृत' का कारण भी आप ही व्यक्त हो जाय। सन्दर्भ एवं भावपृष्ठभूमि के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विरह की वास्तविक अभिव्यञ्जना के लिए' इन प्राकृत-पद्यों की आवश्यकता है। महाकवि कालिदास के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति द्वारा उक्त साँचे में ये पद्य फिट नहीं किये जा सकते।

इन पद्यों की भाषा अपभ्रंश के निकट है और छन्द भी अपभ्रंश-साहित्य का व्यवहृत हुआ है। हमने यहाँ भाषा-वैज्ञानिक एवं व्याकरण सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत न कर केवल काव्य मूल्य पर ही प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

अपभ्रंश (प्राकृत का एक परवर्त्ती रूप) भाषा के इन पद्यों में कवि ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार उपमालंकार की भी योजना की है। प्राय: सभी पद्यों में उपमान निस्यूत है। हम यहाँ उक्त पद्यों के कतिपय उपमानों के सौन्दर्य पर प्रकाश डालेंगे।

काव्य मूल्यों की दृष्टि से इन समस्त पद्यों में कई विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। कवि ने शब्दों का चयन इतनी कुशलता से किया है कि संगीत तत्त्व का सृजन स्वयमेव होता गया है। विरह की अभिव्यञ्जना के लिये शब्दों का जितना मधुर और कोमल होना आवश्यक है उतना ही उनका नियोजन भी अपेक्षित है। कुशल कवि का शब्द-नियोजन ही विरह को अभिव्यक्त करता जाता है। नेपथ्य से आने वाली संगीत ध्वनियों, वर्णों एवं शब्दों का नियोजन बड़ी ही कुशलता से किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विरह शरद कालीन नद के प्रवाह के समान स्वयं प्रवाहित हो रहा है। निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तादुम्मिअमाणसिआ सहअरिदंसणलालसिआ ।
विअसिअ कमल मणोहरए विहरइ हंसी सरवरए ॥ —४।४

हंसी चिन्ता से दुर्मन है, शब्दावली भी उसकी इस दशा का उद्‌घाटन कर रही है। पद्य के पढ़ते ही नेत्रों के समक्ष विरहजन्य वातावरण उपस्थित हो जाता है और ऐसा ज्ञान होने लगता है कि किसी विरही का विरह शब्दों की धारा में प्रवाहित हो रहा है। यों तो अनुप्रास और यमक दोनों ही शब्दालंकार शब्दों के नियोजन से ही रस की सृष्टि करते हैं पर उपर्युक्त पद्य में शब्दों ने ही रस संवेग को उपस्थित कर दिया है। अनिर्वचनीय रसानुभूति को उत्पन्न करने का प्रयास शब्दों के द्वारा ही किया गया है। यह काव्य का सिद्धान्त है कि काव्य का वाच्य सर्वत्र विशेष होता है। वाच्य के इसी विशेषत्त्व को प्रकट करने के लिये भाषा को भी विशेषत्त्व प्राप्त करना होता है। महाकवि ने उक्त समस्त प्राकृत-पद्यों में शब्दों को—ह्रस्व एव लघु रूप में प्रयुक्त कर व्यवहारिक साधारणत्व का अतिक्रमण कर असाधारण रूप में वर्णों की योजना की है और काव्य के संगीत धर्म को उपस्थित किया है। **हिअआहि अपिअ दुक्खओ सरवरए धुदपक्खओ ।** (४।६), **परहुअमहुर पलाविणी** (४।२४), **पिअअम विरह किलामिअवअणओ** (४।२८), **फलिहसिलाहणिम्मलणिज्झरु** (४।५०), **पसिअपिअअमसुंदरिए** (४।५३), आदि पदों द्वारा हृदय की अस्फुट बात भाषा में अभिव्यक्त करने का कवि ने प्रयास किया है। उक्त सभी पद अर्थ को विचित्र ध्वनितरंग द्वारा विस्तृत कर हृदय की गम्भीर और व्यापक भावनाओं को चित्रित करते हैं। इन पदों में संगीत की एक ऐसी मधुर झँकार है, जिससे हृत्तन्त्रियाँ शब्दायमान हुए बिना नहीं रहतीं।

कवि ने जहाँ उक्त प्राकृत पद्यों में संगीतधर्मो का नियोजन किया है वहाँ कतिपय उपमानों द्वारा चित्रधर्म की भी स्थापना की है। बाह्य में किसी वस्तु या घटना के स्मृतिधृत स्फुट-अस्फुट चित्र को मन के परदे में अंकित कर उसकी सहायता से वक्तव्य की अभिव्यक्ति करने के हेतु महाकवि कालिदास ने उपमानों का ग्रहण किया है। इन्द्रियानुभूति द्वारा जिन पदार्थों के संस्कार हमारे हृदय-पटल पर पड़ते हैं, उन्हें उपमानों द्वारा ही प्रेषणीय बनाया जा सकता है। उर्वशी के नख-शिख सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना के हेतु मिअलोअणि (४।८, ४।५९)—मृगलोचनी, हंसगइ (४।२०, ४।५९)—हंसगति, अंबरमाण (४।२३)—अंवरमान, अर्थात् मेघसमान प्रभृति उपमानों का व्यवहार किया है। मृगलोचनी उपमान केवल नायिका की बड़ी-बड़ी आँखों की ही अभिव्यञ्जना नहीं करता, अपितु नायिका की सतर्कता की भी अभिव्यञ्जना करता है यह उपमान मन के अमूर्त्त भावों को मूर्त्त रूप देता है। इसी प्रकार 'हंसगति' उपमान से भी नायिका की सुन्दर मन्थरगति तो अभिव्यक्त होती ही है, साथ ही उसका रूपलावण्य भी मूर्त्तिमान हो जाता है। 'अंवरसमान' उपमान द्वारा कवि ने गज के कृष्णवर्ण की व्यञ्जना के साथ उसके विशाल रूप की भी अभिव्यक्ति की है। इस प्रकार महाकवि कालिदास ने दैहिक एवं मानसिक अनुभूतियों के लिये प्रकृति से विविध प्रकार के उपमान उक्त प्राकृत-पद्यों में प्रयुक्त किये हैं। इन उपमानों के अतिरिक्त कवि गुणवाचक, क्रियावाचक और मानसिक अवस्थावाचक शब्दों का प्रयोग कर भी विरह की स्थिति पर प्रकाश डाला है। 'गोरोअणा कुंकुमवण्णा' (४।३६), 'दिट्ठी' (४।३२), 'सिक्खिउ' (४।३२) जैसे गुणवाचक एवं क्रियावाचक शब्दों से भावों को गतिशील बनाया है। मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो कवि ने शब्दों की योजना द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से की है। शब्द ही हृदय की भाव-विभोर अवस्था को उपस्थित करने में सक्षम्य हैं। यथा :—

पिककारिणी विच्छोइअओ गुरुसोआणल दीविअओ।
वाह जलाउललोअणलो करिवरु भमई समाउलओ ॥—४।२६

अर्थात् अपनी प्यारी हथिनी के विछोह की भयंकर आग में जलता हुआ और रोता हुआ यह हाथी व्याकुल होकर घूम रहा है।

अपभ्रंश छन्द परम्परा की तुकान्त प्रवृत्ति अथवा ताल छन्दों का सर्वप्रथम दर्शन हमें उक्त प्राकृत-अपभ्रंश पद्यों में मिलता है। इनमें अनेक लोकगीतात्मक छन्दों का प्रयोग हुआ है जो परवर्ती कई छन्दों के आदिम रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। चर्चरी गीतियों के विशिष्ट अध्ययन हेतु भी ये पद्य बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे। २४ मात्रावाला एक ऐसा छन्द भी विद्यमान है जिसे कुछ विद्वानों ने रोला छन्द का आदिम रूप माना है।

विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में प्रस्तुत प्राकृत-पद्यों का छन्दों की दृष्टि से विशद विश्लेषण यहाँ प्रसंगानुकूल नहीं है। प्रकाशित संस्करणों की प्रमादजन्य अशुद्धियों के कारण वह सहज सम्भव भी नहीं, किन्तु संक्षेप में उनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

१. गाथा—	४।१, ४।४, ४।५,
२. गाहू—	४।३, ४।६, ४।१६, ४।३५, ४।४३, ४।४८, ४।६४, ४।७६
३. गाथिनी—	४।१४, ४।२३,
४. सिंहनी—	४।५३,
५. स्कन्धक—	४।५०, ४।७१,
६. दोहा—	४।८, ४।३६, ४।४१,
७. रसिका छन्द—	४।२४, ४।३२, ४।६६,
८. छप्पय—	४।५४,
९. रड्डा—	४।२८, ४।५४,
१०. मधुभार—	४।५३
११. दुवई—	४।२, ४।२६,

महाकवि कालिदास द्वारा प्रयुक्त उक्त विविध छन्द भाषा में संगीतात्मकता एवं चित्रात्मकता उत्पन्न करने में समर्थ सिद्ध हुए हैं। कवि ने मन की रसप्रेरणा की अभिव्यक्ति के हेतु शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों के साथ इन छन्दों की नियोजना की है। वास्तव में हमारे शब्द का अर्थ उसकी ध्वनि एवं चित्रसम्पदा पर इतना निर्भर रहता है कि इस समस्त संगीत माधुर्य एवं चित्रसम्पदा को पृथक कर देने पर शब्द का निरपेक्ष अर्थ ढूँढ़ पाना ही कठिन होगा।

कालिदास ने उक्त प्राकृत-अपभ्रंश पद्यों में अपनी प्रकृति के अनुसार वैदर्भी रीति का नियोजन किया है। मधुर कान्तपदावली के साथ असमस्यन्त पद सर्वत्र प्रयुक्त हैं। प्रसाद गुण भी सभी पद्यों में समाविष्ट है। कृत्रिमता अथवा बलपूर्वक शब्द चयन करने की चेष्टा नहीं की गई है। अतएव उक्त पद्य भाषावैज्ञानिक दृष्टि से जितने महत्वपूर्ण हैं उतने ही काव्यमूल्यों की दृष्टि से भी। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org